Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 9, June-2019, ISSN 2230-7540

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उग्रवाद और क्रांतिकारियों के उद्देश्य, कार्यक्रम

KM. Manisha Singh[1]* Abdul Halim[2]

[1] Research Scholar

[2] Research Guide, CMJ University, Meghalaya

सार – *प्राचीन काल से ही हमें भारतीय इतिहास में अनेक उतार चढाव देखने को मिलते रहे हैं। अनेक विदेशी शक्तियाँ भारत आईं और उन्हें जब भी मौका मिला उन्होंने भारतीय संस्कृति और सभ्यता के स्रोतों को कमजोर करने का पूरा प्रयास किया। चाहे ईरानी आक्रमणकारी हों, यूनानी आक्रमणकारी हों, अरब आक्रमणकारी हों, महमूद गजनवी, बाबर, नादिरशाह या अहमदशाह अब्दाली हों इन सभी ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को प्रभावित एवं नष्ट करने का कार्य किया है। इसके परिणामस्वरूप देश की प्राचीन संस्कृति धरोहर आदि में परिवर्तन देखने को मिलते रहे हैं। 1857 की क्रांति से लेकर 1947 ई. तक देश में अनेकों आंदोलन हडतालें, सत्याग्रह, जुलूस एवं सभाओं का दौर जारी रहा। इस दौर को भारतीय इतिहास के राष्ट्रीय आंदोलन के नाम से जाना जाता है। वहीं दूसरी ओर अदम्य पौरूष, अद्भुत साहस, असीम त्याग और अभूतपूर्व बलिदानों का भी इतिहास है। यों तो पूरा देश किसी न किसी रूप में आजादी की लड़ाई में भाग लिया ही है,*

कुंजी शब्द – *राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र*

----------X----------

परिचय

भारत में ब्रिटिश शासन से मुक्ति की प्रक्रिया बहुत पहले आरम्भ हो चुकी थी। इस आन्दोलन में अनके उतार-चढ़ाव आए, किन्तु इसका रूप मूलतः शान्तिपूर्ण था। जब भारतीय रियासतें तेजी से बढ़ते हुए विदेशी प्रभुत्व को रोकने में असमर्थ हो गई तो उस समय जो शिक्षित वर्ग पनप रहा था उससे देश के प्रशासन में अपनी भावना के अनुरुप संवैधानिक आन्दोलन का मार्ग अपनाया। 1857 के विद्रोह को ब्रिटिश सैन्य शक्ति एवं अफसरशाही ने बड़े अमानवीय ढ़ग से दबाया। कुछ समय के लिए राजनीतिक गतिविधियाँ जरूर बदल गया किन्तु पत्रकारिता के विकास के रूप में भारतीय जनता ने अपने आक्रोश को अभिव्यक्त किया और इस अभिव्यक्ति का आकार दिन-ब-दिन बढ़ता गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग अन्तिम दशक में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसके माध्यम से भारतीयों की समस्या पर विचार करने का एक व्यापक दृष्टिकोण सामने आया। इस संस्था ने भारतीय जनता की शिकायतों को वाणी देने और आर्थिक तथा राजनीतिक माँगे पेश करने के लिए एक शक्तिशाली मंच प्रदान किया। जिसका उद्देश्य राज्य की नीतियों के निर्धारण और कार्यान्वयन में भारतीयों की अधिकाधिक सहभागिता के लिए सरकार पर दबाव डालना था। लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों में विशाल जनसमुदाय व्यापक रूप से राजनीतिक संगठनों से सम्बद्ध नहीं हो सका।

स्वाधीनता आन्दोलन में जब उदारवादियों तथा उग्रवादियों की विचारधारा एवं कार्य पद्वति पर दृष्टि पड़ती है तो यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि उदारवादियों ने देश के लिए औपनिवेशिक स्वशासन या ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतीय हित की बात रखी। दादाभाई नौरोजी से लेकर गोपाल कृष्ण गोखले तक कइ उदारवादी विभूतियाँ हुई है जिनका भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में योगदान महत्वपूर्ण रहा है। उदारवादियों के हृदय में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति गहरा लगाव था। वे मार्गदर्शन के लिए इंग्लैण्ड का मुँह ताकते थे। उदारवादी चिन्तन से प्रभावित होकर कांग्रेस जनमत को अपने साथ लेकर नहीं चल सकी। दादाभाई नौराजी उदारवादी नेताओं में प्रांरभिक

www.ignited.in

नेता माने जाते थे, उन्हें स्वयं ब्रिटिश न्यायप्रियता में पूरा विश्वास था। उन्होनें स्वदेशी तथा स्वशासन की बात तो कही थी किन्तु नरमपंथी विचारधारा के समर्थक भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता या स्वराज्य जैसे प्रश्नों प्रभावी ढंग से नहीं रखा।

1906 से 1919 तक का युग उग्रवाद के नाम से जाना गया, इस विचारधारा के समर्थकों में लाल-बाल--पाल का विशेष रूप से नाम लिया जाता है किन्तु इसके साथ ही एक और नाम संशिलस्ट है, जिसके बिना यह अवधारणा अधूरी मानी जायेगी, वह विभूति महर्षि अरविंद घोष थे, जिन्होनें उग्रवादी विचारधारा के अग्रसारण में अहम भूमिका निभायी। बाल गंगाधर तिलक को उग्रवादी नेताओं में प्रमुख नेता माना जाता है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने बहिष्कार का मार्ग और इसका राजनीतिक स्वरूप दिखा कर स्वराज्य का मार्ग प्रश्ज्ञसत किया यह बहिष्कार आन्दोलन गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की स्पष्टतः पूर्व सूचना थी, यदि तिलक ने स्वराज्य के प्रति लोगो में इतना उत्साह पैदा न किया होता तो संभवतः देश गांधीवादी कार्यक्रम के लिए इतना तैयार न होता।

स्वराज्य

वैदिक परिभाषा का एक शब्द है। स्वराज्य माने प्रत्येक व्यक्ति का राज्य यानी ऐसा राज्य जो प्रत्येक को अपना लगे, अर्थात सबका राज्य। स्वराज्य का अर्थ है-- अन्तिम सत्ता जनता के हाथ में हो! उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था का ही दसरा नाम स्वराज्य है। यह सामाजिक व्यवस्था का आधार है। स्वराज्य व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है।

कांग्रेस और स्वराज्य

यद्यपि यह कहा जाता है कि दादा भाई नौरोजी तथा बदरूद्दीन तैय्यब ने स्वराज्य का प्रश्न उठाया था किन्तु वे कांग्रेस के मंच से इसे उठाने में असफल रहे। सबसे पहले तिलक ने लोगो को बहिष्कार का मार्ग और इसका राजनीतिक स्वरूप दिखाकर स्वराज्य का मार्ग प्रशस्त किया। तिलक ने स्वराज्य के प्रति लोगो में इतना उत्साह न पैदा किया होता तो भविष्य में लोग इस विचारधारा से इतना न जुड़ते। तिलक के दिमाग में दिल्ली कांग्रेस-अधिवेशन के समय से ही सत्याग्रह का विचार मंडरा रहा था।

दिसम्बर 1906 में पहली बार कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में स्वराज्य का प्रश्न उभरा। तिलक ने नये दल के सिद्वान्तों पर दिये गये अपने प्रसिद्ध भाषण में उन्होनें बहिष्कार के शक्तिशाली राजनीतिक अस्त्र पर बल दिया, जनता से असहयोग की पुरजोर अपील की। इस तरह से कहा जा सकता है कि 1906 से कांग्रेस के मंच से स्वराज्य का मुद्दा उठने लगा।

लोकमान्य तिलक की स्वराज्य अवधारण

यद्वपि कांग्रेस ने अपने कलकत्त कांग्रेस अधिवेशन में स्वराज्य को औपचारिक रूप से अपना लक्ष्य घोषित कर दिया था लेकिन इस अवधारणा को लोकप्रिय एवं प्रभावी बनाने की दृष्टि से वह उदासीन दिख रही थी, यह तिलक ही थे, जिन्होनें माण्डले जेल से लौटने पर स्वराज्य का संदेश घर-घर पहुंचाने के लिए एक प्रभावी योजना बनायी, इसके लिए उन्होनें होमरूल लीग की स्थापना की, स्वराज्य की स्पष्ट शब्दों में उन्होनें व्याख्या की। इस बात के औचित्य को सिद्ध किया कि भारत को अविलम्ब स्वराज्य दिया जाना आवश्यक है।

1916 की लखनऊ कांग्रेस में तिलक ने भारतीयों को स्वराज्य का मंत्र देते हुए कहा- स्वराज्य भारतवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार है। तिलक ने स्वराज्य की मांग को नैतिक, राजनीतिक और सामाजिक सभी आधारो पर न्यायोचित ठहराया और यह विश्वास व्यक्त किया कि स्वराज्य की प्रगति भारतीय राष्ट्रवाद की एक महान विजय होगी। तिलक ने स्वराज्य को एक राजनीतिक आवश्यकता मात्र नहीं बल्कि नैतिक जरूरत बताया और कहा कि यह तो मनुष्य के नैतिक स्वरूप की अनिवार्य आवश्यकता है। हर व्यक्ति में एक दैवीय तत्व विद्यमान रहता है, जिसकी अनुभूति के लिए आवश्यक है कि उसे स्वधर्म के अनुसार आचरण करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो, सच्ची स्वतंत्रता कोई स्वेच्छाचारिता नहीं है वरन् विनियमित और संयमित स्वतंत्रता है, जिसकी प्राप्ति तभी संभव है जब हमारे सामाजिक जीवन में ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना हो, जिसमें लोग धर्मानुसार चलें, साथ ही जनता की जो नैतिक मनोभावना हो। तिलक ने कहा कि इस प्रकार की उत्तरदायी राजनीतिक व्यवस्था का ही दूसरा नाम स्वराज्य है।

तिलक ने स्वराज्य को सामाजिक व्यवस्था का आधार बताया, उनका मानना था कि राष्ट्र की प्रगति का मूल स्वराज्य में ही निहित है, स्वराज्य के अभाव में राष्ट्र का बहमुखी विकास नहीं हो सकता। स्वराज्य की धारणा को तिलक ने प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित माना, उन्होनें कहा कि स्वराज्य व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है ओर गोरो द्वारा भारत पर अधिकार बनाये रखना एक अवांछनीय कार्य है। यह भारतीयों का पहला कर्तव्य है कि वे स्वराज्य के लिए संघर्ष का रास्ता अपनायें। जॉन स्टुअर्ट,

www.ignited.in

मिल ने राष्ट्रीयता की जो परिभाषा दी थी, तिलक उससे सहमत थे। 1919 तथा 1920 में उन्होनें विल्सन की आत्मनिर्णय की धारणा को स्वीकार करते हुए भारत में इसके व्यावहारिक प्रयोग की मांग की थी, वस्तुतः तिलक कांदे

राष्ट्रवादी दर्शन आत्मा की सर्वोच्चता के वेदान्तिक आदर्श और मैजिनी, वर्क, मिल तथा विल्सन की धारणाओं का समन्वय था, जिसे तिलक ने स्वराज्य का नाम दिया। 1916 के पूर्व तक स्वराज्य से तिलक का अर्थ था -देश के लिए पूर्ण स्वाधीनता की मांग करना, जिसमें ब्रिटिश सम्राट के लिए कोई स्थान नहीं था, किन्तु 1916 में तिलक ने स्वराज्य सम्बन्धी अपनी विचारधारा को उस समय की परिस्थितियों में अधिक समयानुकूल और व्यवहारिक बना लिया, होमरूल आन्दोलन के अन्तर्गत मई 1916 को अहमद नगर में स्वराज्य पर अपने पहले भाषण में तिलक ने कहा स्वराज्य से अभिप्राय केवल यह है कि भारत के आन्तरिक मामलों का संचालन और प्रबन्ध भारतीयों के हाथ में हो। हम ब्रिटेन के राजा सम्राट को बनाये रखने में विश्वास करते हैं।

उल्लेखनीय है कि तिलक ने अपनी पूर्व धारणा अर्थात पूर्ण स्वाधीनता को ध्यान में रखते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के अर्न्तगत स्वराज्य का व्यवहारिक सुझाव दिया था। यह पूर्ण स्वाधीनता को दिशा में उनका पहला महत्वपूर्ण कदम था। उनके द्वारा इस स्थिति को अपनाये जाने का कारण यह भी था कि स्वराज्य की मांग को राजद्रोह से अलग किया जा सके, और देश की जनता को स्वराज्य के लिए संगठित किया जा सके। तिलक जानते थे कि स्वराज्य का संदेश प्रसारितत करने के लिए उनका जेल से बाहर रहना आवश्यक था, जिससे वे जनता का जागरूक, संगठित और स्वतंत्रता-संघर्ष के लिए तैयार कर सकें। उनका आदर्श तो भारत के लिए संपूर्ण अर्थों में पूर्ण स्वाधीनता ही था। तिलक स्वराजय के साथ अपने देश के लिए ऐसी शासन व्यवस्था के समर्थक थे, जिसमें शासन के सभी अधिकारी और कर्मचारी जनता के प्रति सचेत रहें, तथा कार्यपालिका के अधिकारी तथा कर्मचारी स्वंय को जनता के प्रति उत्तरदायी समझें। तिलक का विश्वास था कि राज्य का अस्तित्व जनता के कल्याण और सुख के लिए होता है। इस अवसर पर स्वराज्य का अर्थ था अन्तिम सत्ता जनता के हाथ में हो। इसी आधार पर उन्होनें कहा था कि भारतीय रियासतो में भारतीय शासक होते हुए भी स्वराज्य नहीं है।

तिलक भारतीय शासन प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन चाहते थे। इस सम्बन्ध में उनके जीवनी लेखक पर्वते ने कहा कि तिलक के नाम के साथ जो विविध सम्मानित सम्बोधन जोड़े जाते हैं, उनमें लोक तांत्रिक स्वराज्य के प्रतिपादक अवश्य ही जुड़ जाना चाहिये। उन्होनें आगे कहा कि यह स्पष्ट है स्वराज्य की तिलक की धारणा मुख्यतया शासन चलाने वाले व्यक्तियों से नहीं वरन शासन के मूल प्रयोजनों से अधिक सम्बन्धित है। तिलक ने स्वराज्य की धारणा को इतने स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किया कि उसे समझने में कोई संदेह नही रह जाता। वास्तव में तिलक के हृदय में जो दर्द था, वह फिरोशाह मेहता तथा बनर्जी आदि नेताओं में नहीं था ये नेता स्वराज्य का उल्लेख तो करते थे किन्तु शायद उन्होनें दासता के अपमान को तिलक की सी गहराई से महसूस नही किया था।

अध्ययन का उद्देश्य

1. राष्ट्रीय आर्थिक विकास और सामाजिक सद्भव उग्रवाद से ग्रस्त हो जाने का अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

2. अंग्रेजी साम्राज्य ने भी इन क्षेत्रों के राजाओं को उनके राज्याधिकारों से वंचित नहीं किया था।

निष्कर्ष

1889 से 1905 तक का युग उदापंथी युग के नाम से जाना जाता है किन्तु इस युग के नेताओं मे दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, महादेव गोविंद रानाडे, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी तथा गोखले जैसे कई उदारवादी विभूतियाँ हुई, जिन्होनें कांग्रेस के जन्म से पूर्व से लेकर उग्रवाद के जन्म के पूर्व तक स्वाधीनता आन्दोलन में यथाशाक्य सहयोग प्रदान किया। दादाभाई नौराजी भारतीय राजनीति के पितामह थे! उन्होने भारत से लेकर भारतेत्तर राष्ट्रीय आन्दोलन को धार में कोई कोताही नहीं की। उनका अनुदाय सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा। तत्पश्चात सुरेन्द्र नाथ बनर्जी जैसे प्रतिभाशाली राष्ट्रधर्मी पुरोधा ने भी स्वातन्त्रय संघर्ष के अगसारण में अगुवा रहे। वे अपने जीवन लगभग आठ दशको में लगभग छः दशक तक राष्ट्रसेवी रहे। उनकी प्रभावी भूमिका के कारण ही उनको भारत का ग्लैडस्टन कहा गया। उनकी तुलना सिसरो तथा वर्क से की गयी!

संदर्भ

1. जैन, निर्मला मीर बाई जी कामा, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली, 1993

2. जैन, यशपाल - आधुनिक भारत की विभूतियाँ, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1991

www.ignited.in

3. जोशी, वी0एस0 - बासुदेव बलवन्त फड़के, बम्बई, 1959

4. जोशी, एम.सी. - स्वतंत्रता संग्राम का संक्षिप्त इतिहास, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992

5. जोशी, रत्नलाल - क्रांतिकारी प्रेरणा के स्त्रोत, कलकत्ता, 1971

6. झारी, विजयदेव - बंगाल के अमर शहीदो की कहानियॉ, इतिहास शोध संस्थान, नई दिल्ली, 1986

7. ताराचन्द भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग-तीन), नई दिल्ली, 1982

8. त्रिवेदी, रामदुलारे - काकोरी के दिलजले, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982

9. त्रिपाठी, वचनेश - हम विद्रोही चिर अशान्त, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992

10. तेन्दुलकर, डी.जी. - महात्मा लाइफ आफ मोहन दास करमचन्द गांधी, भाग एक एवं दो, नई दिल्ली, 1972

11. थापर, मथुरादास - अमर शहीद सुखदेव, निधि, प्रकाशन, दिल्ली, 1980

12. दत्त, रजनीपाम - दी इंटरनेशनल लारेंस एण्ड विशार्ट, लंदन, 1964

13. द्योल, गुरुदेव सिंह - दी रोल आफ गदर पार्टी इन दी नेशनल मूवमेण्ट, दिल्ली, 1909

14. दत्त, के.के. - बिहार में स्वातंत्रय आन्दोलन का इतिहास, खण्ड 1, 2, व 3 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1974, 1975

15. द्वारका दास, काजी -- इंडियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम, बम्बई, 1966

Corresponding Author

KM. Manisha Singh*

Research Scholar

www.ignited.in